Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2022 GISRRJ | Volume 5 | Issue 2 | ISSN : 2582-0095

साहित्य का समाजशास्त्र और दलित आत्मकथाएँ

अतुल कुमार
शोधार्थी (पी-एच.डी.) हिंदी विभाग, हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय|

Article Info
Volume 5, Issue 2
Page Number : 57-60
Publication Issue :
March-April-2022
Article History
Accepted : 02 March 2022
Published : 20 March 2022

शोध सार:- साहित्य का सम्बन्ध हमेशा से मनुष्य के जीवन चरित्र से रहा है। मनुष्य समाज में रहता है और समाज में राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं भाषा के आधार पर परिवर्तन होता है तो साहित्य पर इसका प्रभाव अवश्य पड़ता है। जैसे-जैसे मनुष्य के विचार एवं व्यवहार में अंतर आता है तो उसका प्रभाव समाज में निवास कर रही जनता पर भी पड़ता है। अगर जनता इससे प्रभावित होती है तो साहित्य भी प्रभावित होगा।साहित्य मनुष्य की जीवन-मरण, उल्लास, वेदना, सुख-दुख, आशा, आकांक्षा, की अभिव्यक्ति का साधन न बनकर वह समाज की पीड़ा, वेदना, ग्लानि, उतार-चढ़ाव को भी वाणी दें रहा है।

मुख्य शब्द :- साहित्य, समाज, समाजशास्त्र, यथार्थवाद, सामाजिक, दलित, आत्मकथा।

साहित्य के विषय में बीसवीं सदी में सबसे अधिक चिंतन हुआ है। रचना में भाषा की आलोचना मुख्य हो गई थी। साहित्यिक विवेचन केवल रचना की भाषा चिंतन तक ही सीमित हो गया। जिसमें रुपवाद प्रमुख स्थान रखता है, लेकिन बाद में कृति में भाषा के साथ-साथ अन्य तत्वों का होना भी आवश्यक माना जाने लगा है। "अब सम्पूर्ण सामाजिक प्रक्रिया से साहित्यिक प्रक्रिया का सम्बन्ध बदल गया है। आज के समाज से साहित्य के बदले हुए सम्बन्ध को यथार्थवादी ढंग से समझने की जरुरत है न कि उसकी काल्पनिक स्वतंत्रता की रक्षा के लिय तथाकथित अन्तर्वर्ती आलोचना से चिपके रहने की। अब इस कछुआ धर्म से काम नहीं चलेगा। साहित्य का समाजशास्त्र आधुनिक समाज में साहित्य की वास्तविक स्थिति और भूमिका को यथार्थवादी ढंग से समझने का प्रयत्न करता है।"[1] साहित्य में कल्पना का तत्त्व प्रमुख रूप से रहा है साहित्यकार रचना में कल्पना के लिए स्वतन्त्र रहा है लेकिन आधुनिक समय में साहित्य को यथार्थवाद के प्रतिमान से देखा जाता है। इसलिए समाज के प्रत्येक स्वरूप का साहित्य में वर्णन मुख्य हो जाता है। साहित्य में सामाजिकता की चिंता पहले भी रही है, लेकिन अब व्यवस्थित दृष्टि और पद्धति का विकास हुआ है।"आजकल साहित्य के समाजशास्त्र के विकास की दो धाराएं हैं। एक धारामें साहित्य में समाज की अभिव्यक्ति की खोज होती है। उसे हम मीमांसावादी धारा कह सकते हैं। दूसरी में साहित्य की सामाजिक स्थिति का विवेचन होता है। वह अनुभववादी धारा है। मीमांसावादी धारा के अंतर्गत मार्क्सवादी, आलोचना समाजशास्त्री और संरचनावादी दृष्टियाँ सक्रिय हैं तोअनुभववादी पद्धति में पुरानी विधेयवादी दृष्टि के साथ-साथ संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टियां सक्रिय दिखाई देती हैं।"[2] साहित्य में पहले रचना को आत्मनिर्भर माना जाता था जिसमें आन्तरिक बनावट और सौन्दर्यबोध पर विशेष जोर दिया जाता था। रचना में अभिव्यक्त समाज उसकी व्याख्या का विषय नहीं होता है। "साहित्य समय विशेष की ऐतिहासिक-सामाजिक स्थितियों, समस्याओं, विचारों, अनुभवों को आत्मसात करके व्यक्त करता है, उस ढंग से साहित्य और समाज के पारस्परिक रिश्ते पर आरम्भ में बल नहीं दिया गया। सामाजिक यथार्थ और सामाजिक चेतना मिलकर कैसे साहित्य के रूप-निर्माण में योग देते हैं, आधुनिक काल में इस पर विचार-विश्लेषण करने की आवश्यकता साहित्य के समीक्षक बराबर महसूस करते रहे हैं। सामाजिक परिवर्तनों से साहित्यिक परिवर्तन कैसे प्रेरित होते हैं, यह एक महत्त्वपूर्ण सवाल है। सामाजिक परिवर्तन तो साहित्यिक परिवर्तन की पहचान कराते ही हैं, साहित्य में भी यह शक्ति होती है कि वह सामाजिक चेतना को प्रेरित और प्रभावित करे।"[3] सामाजिक

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

चेतना से तात्पर्य पाठक की रूचि का निर्माण करना और आवश्यकता पड़ने पर उसमें परिवर्तन या अनुकूलन करना। समाजशास्त्रीय दृष्टि साहित्य का अध्ययन करने का अर्थ साहित्य और पाठक के बीच संबंधों का विश्लेषण किया जाना है।

साहित्य और समाज के बीच सम्बन्ध को पहले व्यवस्थित विवेचन करने का श्रेय फ्रांसीसी दार्शनिक और आलोचक ईपालीत तेन (1828-93) को दिया जाता है। तेन ने तीन अवधारणाओं के उपयोग का प्रस्ताव दिया- प्रजाति, क्षण और परिवेश। तेन का दावा था कि "यदि इन शक्तियों को मापा जा सके और उनका अर्थ निकाला जा सके, तो इनसे भावी सभ्यता के लक्षणों के बारे में नतीजे निकले जा सकते हैं।प्रजाति, क्षण और परिवेश के बीच अंत:क्रिया एक व्यावहारिक अथवा चिन्तनशील 'मानसिक संरचना' उत्पन्न करती है। यह 'मानसिक संरचना' उन 'बीजरूप विचारों' के विकास की दिशा में ले जाती है जो निश्चित शताब्दियों और युगों की विशेषता होते हैं और महानकला एवं साहित्य में अभिव्यक्ति पाते हैं। इस सूत्र का महत्त्व भौतिक कारणों का बयान करने में उतना नहीं है, जो उन्नीसवीं शताब्दी में आम बात थी, बल्कि इस कारण है कि यह एक साहित्यिक कृति और उसके समाज के बीचनिश्चित संबंधों की ओर संकेत करता है।"[4] साहित्यिक कृति की व्याख्या के लिए लेखक की जीवनी और परिवेश को आवश्यक माना गया है। मनोवैज्ञानिक आलोचक तो पूर्णत: लेखक की जीवनी पर आधारित विश्लेषण होता है। साहित्य का जोर विश्वदृष्टि है जो वैयक्तिक नहीं सामाजिक होता है। "साहित्य, कला, दर्शन और सारत: भाषा है। इनके माध्यम से मनुष्य एक दूसरे के भावों और विचारों का विनिमय करता है। व्यक्ति समसामयिक भी हो सकते हैं, भावी पाठक भी हो सकते हैं, ईश्वर भी हो सकते है। वह विचार विनिमय के अन्य प्रकारों से साहित्य और कला का स्वरूप भिन्न होता है। इनमें सब कुछ कहा नहीं जाता-कुछ अनकहा रह जाता है। यह उसकी संरचना का अंग है। इसके आगे भाषा के बारे में कुछ नहीं कहा गया है। किन्तु यह बताया गया है कि यद्यपि कृति व्यक्ति विशेष द्वारा रची जाती है पर उस रचना के मूल में विश्वदृष्टि होती है-यह अनुभव की गई विश्वदृष्टि है। अनुभूत, विश्वदृष्टि और बाहर के विश्व-प्रपंच में तारतम्य ढूढना आलोचना का काम है। जहाँ रचना की आन्तरिक और प्रपंच में संगति या संवाद नहीं है, वहाँ रचना घटिया दर्जे की होगी।"[5] विश्वदृष्टि की धारण गोल्डमान के साहित्य के समाजशास्त्र की बुनियाद है। विश्वदृष्टि मानव समाज के जीवन में पहले ही निहित होता है, लेकिन वह दर्शन, कला और साहित्य में व्यक्त होती है। इसलिए कृति के अध्ययन से ही खोज किया जाता है न कि वर्ग के अध्ययन से। "प्रत्येक कृति किसी लेखक की रचना होती है और वह लेखक के विचारों तथा अनुभूतियों को व्यक्त करती है। लेकिन वे विचार और भाव समाज तथा वर्ग के दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार और चिंतन से प्रभावित होते हैं।उनके स्वरूप को लेखक के अपने वर्ग या समूह और समाज के दूसरे व्यक्तियों के विचारों और भावों से जोड़कर अंतर्वैयक्तिक सम्बन्ध भावना के रूप में ही समझा जा सकता है। साहित्यिक कृति सामूहिक चेतना या परावैयक्तिक चेतना की अभिव्यक्ति इसा अर्थ में होती है। उसकी विश्वदृष्टि की संरचनाएं लेखक की निजी निर्मित नहीं होतीं, बल्कि उसके वर्ग के दूसरे व्यक्ति भी उस विश्वदृष्टि के सहभागी होते हैं।"[6]

हिंदी साहित्य में गद्य विधा में आत्मकथा का प्रमुख स्थान है। दलित साहित्यकारों ने अपनी वेदना, सामाजिक चेतना को आत्मकथा के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। आत्मकथा में जीवन में घटित घटनाओं का सम्पूर्ण दस्तावेज होता है। आत्मकथा केवल सुखमय जीवन की घटना की व्याख्या के लिए नहीं होता है वह जीवन की दुखमय और अशोभनीय घटनाओं को ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करने के लिए होता है। लेखक ईमानदारी पूर्वक जीवन की प्रत्येक घटना का उल्लेख करता है। इस प्रकार वह साहित्य के समाजशास्त्र के अधिक निकट दिखाई देते है, इसलिए साहित्य के समाजशास्त्र के प्रतिमान के माध्यम से दलित आत्मकथाओं का विश्लेषण करते है। "आत्मकथाएँ दलित लेखकों के अदम्य जीवन-संघर्ष के साथ आगे बढ़ने का संदेश देती हैं, क्योंकि दलित आत्मकथाकार बताना चाहते हैं कि जो नारकीय जीवन हमें मिला, उसमें व्यक्ति का अपराध नहीं है। शिक्षा, साहित्य, भूमि आदि उत्पादन के साधनों से वंचित और सामाजिक गतिविधियों से अलग-थलग कर हमें मजबूर बना दिया गया। यह हमारे पूर्वजन्मों के कारण नहीं है, बल्कि पक्षपातपूर्ण सामाजिक व्यवस्था की नियति के कारण है।"[7] दलित आत्मकथा व्यक्ति के जीवन के साथ उसके समय एवं परिवेश की भी व्याख्या करता है। मनोवैज्ञानिक आलोचकों के आधार पर दलित आत्मकथा को किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत जीवन

घटना का वर्णन है। लेकिन आत्मकथा पढ़ने के बाद यह भ्रम भी दूर हो जाता है कि वह एक पूरे समाज की परिस्थितियाँ का वर्णन है। "दलित आत्मकथाएँ दलित समाज के ऐसे दस्तावेज हैं जो दलित जीवन की ऐतिहासिक त्रासदी को व्यक्त करते हैं। लेखकों ने अपने अनुभवों को प्रमाणिक दस्तावेजों का रूप दिया है जो कि दलित-चिंतन की आधारभूत तैयार करते हैं। अपने चिंतन की आग में अनुभवों को तपाकर, विश्लेषित करके इस तरह संयोजित किया है कि पाठक उससे दलित-जीवन के बारे में मत बना सके, उसे जान सके व समझ सके। लेखकों के अनुभव पाठकों-चिंतकों को आधार प्रदान करते हैं कि वे इन अनुभवों के आधार पर कोई दृष्टि विकसित कर सकें। दलित-चिंतन के लिए, ये अनुभव महत्वपूर्ण हैं जिनसे समाजशास्त्री, दार्शनिक, राजनेता बेहद महत्त्वपूर्ण सबक ले सकते हैं।"[8] दलित समाज का वर्णन इससे पहले सुव्यवस्थित ढंग से प्राप्त नहीं होता है। दलित लेखकों ने अपने अनुभव के माध्यम से साहित्य में चिंतन के स्वरूप की दृष्टि विकसित की है। जिसमें सम्पूर्ण मानव समाज के समानता एवं मूल अधिकार की माँग करते है। किसी भी समाज के लिए अपनी संस्कृति एवं सभ्यता होती है, लेकिन दलितों में शिक्षा से वंचित होने के कारण वे इसे लिपिबद्ध नहीं कर सके। शिक्षा प्राप्त होने पर इन्होंनेअपने समाज को बचने के लिए सांस्कृतिक एवं समाज को सहेजने का प्रयास है। दलित साहित्य में समाज और संस्कृति की अभिव्यक्ति रचनाओं में प्रमुख रूप से देखी जा सकती है। "ऊपर से देखने पर दलित साहित्य का सरोकार केवल दलित समाज तक ही दिखाई पड़ता है, इसलिए ऊपरी तौर पर इसकी सामाजिकता दलित समाज तक ही दिखाई पड़ेगी; किन्तु इसकी गहराई में मानव मुक्ति का संग्राम छिपा हुआ है, इसलिए इसके सरोकार भी अखिल मानवता से है। इस दृष्टि से दलित साहित्य की सीमा में सम्पूर्ण मानव समाज समा जाता हैं। अत: यहाँ हम दलित साहित्य की सीमित और व्यापक दोनों ही सामाजिकता की बात करेंगे।"[9] दलित साहित्य पर यह आरोप लगता है कि वह केवल दलित समाज का ही साहित्य है लेकिन जब हम दलित साहित्य के चिंतन एवं उद्देश्य को देखते है तो इसमें सम्पूर्ण मानव समाज के मुक्ति एवं मानव जाति का उद्धार दिखाई पड़ता है। भारतीय समाज में गाँव, स्कूल एवं सरकारी कार्यालय का जो मानव समाज पर आदर्श रूप सब के सामने था उसको दलित आत्मकथाकारों ने अपने कोण से दिखाया है। "बेबी काम्बले की आत्मकथा की भूमिका में मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है-'अगर यह आत्मकथा है तो एक व्यक्ति की नहीं, बल्कि एक समुदाय की आत्मकथा है। व्यक्ति के बदले समुदाय को केंद्र में रखने से इन कृतियों का स्वरूप और मन्तव्य भिन्न हो जाता है। इनमें 'मैं' दृष्टा के रूप में होता है और उसके समुदाय का भूत, वर्तमान ही कथा का प्लाट बनता है। लेखक के 'आत्म' का विस्तार और विकास समुदाय की नियति में गूँथ कर ही प्रकाशित किया जाता है।"[10] दलित आत्मकथाओं की एक सीमा भी है अगर समाज को परम लक्ष्य बना दिया जायेगा तो आत्मकथा के तत्व समाप्त हो जायेगे। दलित आत्मकथाकारों ने समाज के साथ-साथ अपनी भी बात को बखूबी रखा है। आत्मकथाएँ भारतीय समाज के साथ दलित समाज के भीतर अन्याय, जातिगत भेदभाव को उजागर करती है। "समाजशास्त्र का उद्देश्य शोषण और विषमताहीन समाज का निर्माण करना है और इसी के मद्देनजर वर्तमान समाज की आलोचना करना है; समाज में चल रही प्रक्रियाओं को समझना है ताकि परिवर्तन को अंजाम दिया जा सके; तो समाज को शोषण, उत्पीड़न और उससे उत्पन्न पीड़ा को समझने की क्षमता विकसित करनी होगी। इसके लिए समाज वैज्ञानिकों को तर्कसंगत दृष्टिकोण से विभिन्न ज्ञान परम्पराओं को खंगालना तो होगा ही, लेकिन साथ ही एक संवेदनशील मनुष्य की तरह समाज में चल रही शोषण-प्रक्रियाओं को समझते हुए उनसे निरंतर संवाद स्थापित करना होगा।"[11]भारतीय सामाजिक संरचना जाति आधारित है। ब्राह्मणवाद के कई स्वरूप है जिसमें जाति, धर्म और लैंगिक भेदभाव से मुक्ति ही सामाजिक समरसता की कल्पना की जा सकती है। आत्मकथाएँ नये मुक्त समाज की कल्पना की आकांक्षा करती है। आत्मकथा में मनुष्य ही मुख्य चरित्र है।

दलित लेखक ने कला, शिल्प और सौंदर्यशास्त्र से ज्यादा प्रमुखता एक दलित की सामाजिक स्थिति, सांस्कृतिक अस्मिता और उसके आर्थिक अधिकारों को दिया है। "किसी भी दलित आत्मकथा को उठाकर देख लिया जाए, वहाँ सामाजिक अपमान, तिरस्कार, भेदभाव, अन्याय, पिछड़ापन, अन्धविश्वास, झाड़-फूंक, जादू-टोना, अशिक्षा, अज्ञानता आदि एक जैसी समस्याएँ देखने को मिल जायेंगी। इनकी सांस्कृतिक या धार्मिक आस्थाएँ पाखंड, अन्धविश्वास, भूत-प्रेत, दैवीय शक्तियां अनेकानेक कुरीतियों के अतार्किक

वर्चस्व को दर्शाती हैं। इनके जीवन का अर्थशास्त्र भूख, गरीबी, रोग, बालश्रम, शोषण और बेगार के इर्द-गिर्द मंडरा रहा है। ऐसी वितरीत, कटु स्थितियों में भी प्रत्येक दलित लेखक के संघर्ष पर एक नजर भर डालने से ज्ञान होता है कि जो जिजीविषा, अदम्य साहस, जीवट, संघर्षशील, धैर्य इनके मनोवैज्ञानिक को आकार देते हैं, वे दुर्लभ हैं।"[12]

निष्कर्ष :

दलित आत्मकथा में सामाजिक उत्पीडन, आर्थिक शोषण को प्रमुख स्थान देती है। जिससे लड़कर रचनाकार मुख्यधारा के समाज के सामने एक आदर्श प्रस्तुत करता है। दलित समाज के प्रत्येक संरचना को आत्मकथा के माध्यम से आत्मकथाकर परत दर परत सबके सामने रखता है। सम्मान, बंधुत्व, प्रेम और स्वतंत्रता की बात तो अन्य साहित्य भी करते है लेकिन दलित साहित्य मानव मुक्ति की बात करता है। दलित साहित्य में कला और सौन्दर्य देखना व्यर्थ है। यह समाजशास्त्र के प्रतिमानों पर खड़ा हुआ है। जिसमें किसी भी कल्पना लोक में न जाकर यथार्थ चित्रण प्रमुख है। दलित साहित्य मानव श्रम के सौन्दर्य और अन्यायपूर्ण विसंगतियों से मुक्ति को अपना सामाजिक सरोकार माना है और इसके केंद्र में मनुष्य और मनुष्यता है।

सन्दर्भ सूची

1. पाण्डेय, मैनेजर;साहित्य और समाजशास्त्रीय दृष्टि; आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा; संस्करण 2016; पृष्ठ 12
2. वही, पृष्ठ 49
3. स. जैन, निर्मला; साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन; हिंदी मध्यम कार्यन्वय निदेशालय; दिल्ली विश्वविद्यालय, संस्करण 2009; पृष्ठ 09 (भूमिका)
4. वही, पृष्ठ 47
5. सिंह, बच्चन; साहित्य का समाजशास्त्र; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद; संस्करण 2011; पृष्ठ 90-91
6. पाण्डेय, मैनेजर;साहित्य और समाजशास्त्रीय दृष्टि; आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा; संस्करण 2016; पृष्ठ 166
7. नैमिशराय, मोहनदास; हिंदी दलित साहित्य; साहित्य अकादमी; नई दिल्ली; संस्करण 2018; पृष्ठ 172
8. चन्द्र, सुभाष; दलित आत्मकथाएँ अनुभव से चिंतन; साहित्य उपक्रम, दिल्ली; संस्करण 2012; पृष्ठ 156
9. ठाकुर, हरिनारायण; दलित साहित्य का समाजशास्त्र; भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली; संस्करण 2010; पृष्ठ 73
10. तिवारी, बजरंग बिहारी; दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र; नवारुण प्रकाशन, गाजियाबाद; संस्करण 2015, पृष्ठ15211.
11. जैन, पुनीता; हिंदी दलित आत्मकथाएँ; सामयिक पेपरबैक्स, नई दिल्ली; संस्करण 2018; पृष्ठ 57
12. वही, पृष्ठ 58